(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रमुखआचार्यों के ध्वन्यालोक की विस्तृत मीमांसा

डॉ नीरज कुमारी

सह . आचार्य, संस्कृत विभाग, ठाकुर बीरी सिंह महाविद्यालय, टूंडला, फिरोजाबाद, भारत

DETAILED ANALYSIS OF DHVANYALOK OF THE MAIN MASTERS OF SANSKRIT POETRY

Dr. Neeraj Kumari

Associate Professor, Sanskrit Department

Thakur Biri Singh Degree College Tundla, Firozabad, India

ABSTRACT

Sanskrit poetry is very useful for the society, in the sound of Sanskrit poetry, Anandvardhan, in general, all the subjects of knowledge-society were included in Sanskrit poetry. Anandvardhan has often given examples of pre-sound poets of Sanskrit, but many are also of Anandvardhan himself. : The sentences of Pratiharenduraj, Kuntak, Mahimbhatta, Kshemendra, Mammat are proof of this. But the seed of doubt is in Abhinavagupta's 'Lochan'. While explaining Karikas and Vritti, Abhinav has mentioned Karika car and Vritti car separately at many places. Apart from this, the use of the word Moolagranthkrit (Kar) for Karika Car and Granthkrit (Kar) for Vrittikar is also found in 'Lochan'.

सारांश

संस्कृत काव्य शास्त्र समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी है संस्कृत काव्य शास्त्र आनन्दवर्धन के ध्वन्याोक में सामान्यतः ज्ञान - समाज के सभी विषयों को संस्कृत काव्य शास्त्र में समाविष्ट कर दिया गया। आनन्दवर्धन ने उदाहरण प्रायः संस्कृत के पूर्व - ध्वनिकालीन कवियों के दिये गये हैं पर अनेक स्वयं आनन्दवर्धन के अपने भी हैं । : प्रतिहारेन्दुराज, कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, मम्मट सभी के वाक्य इसके प्रमाण हैं । परन्तु शङ्का का बीज अभिनवगुप्त के 'लोचन' में है। कारिकाओं और वृत्ति की व्याख्या करते हुए अभिनव ने अनेक स्थलों पर कारिका कार और वृत्ति कार का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कारिका कार के लिए मूलग्रन्थकृत (कार) तथा वृत्तिकार के लिए ग्रन्थकृत् (कार) शब्द का भी प्रयोग 'लोचन' में मिलता है

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

परिचय

संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रमुख आचार्यों में से कुछ ध्वनि शास्त्र के महान् आचार्य भी थे जो विभिन्न विषयों पर विस्तृत मीमांसा की गई। इसमें भारतीय संस्कृति, वेदांत तत्त्व, रस, अलंकार आदि जैसे विषय शामिल हैं। संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रमुख आचार्यों ने अपने ग्रंथों में ध्वनि तत्त्व को बहुत महत्व दिया है। ध्वनि तत्त्व का मूल्यांकन करने से उन्होंने काव्य के रचनाकार की भावनाओं एवं विचारों को समझने का प्रयास किया है। इनमें से कुछ प्रमुख आचार्यों एवं उनके ग्रंथों के ध्वन्यालोक निम्नलिखित हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन

'ध्वन्यालोक' की रचना के विषय में संस्कृत के पण्डितों में तीव्र मतभेद है । ग्रन्थ के तीन अंग हैं: कारिका, वृत्ति, तथा उदाहरण । कारिका में सिद्धान्त का सूत्र रूप में प्रतिपादन है, वृत्ति में कारिकाओं की व्याख्या हैं और फिर उदाहरण हैं। उदाहरण प्रायः संस्कृत के पूर्व-ध्वनिकालीन कवियों के दिये गये हैं पर अनेक स्वयं आनन्दवर्धन के अपने भी हैं। जहाँ तक वृत्ति का सम्बन्ध है, यह निर्विवाद है कि उसके रचयिता आनन्दवर्धन ही थे। प्रश्न कारिकाओं की रचना का है । संस्कृत की प्रचलित परम्परा के अनुसार कारिका तथा वृत्ति दोनों की रचना आनन्दवर्धन ही की है। 'ध्वन्यालोक' एक ही ग्रन्थ है और उसका एक ही रचयिता है। उत्तर- ध्वनि काल के प्रायः सभी आचार्य आनन्दवर्धन को ही ध्वनिकार अर्थात् कारिका और वृत्ति दोनों का रचयितता मानते हैं : प्रतिहारेन्दुराज, कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, मम्मट सभी के वाक्य इसके प्रमाण हैं । परन्तु शङ्का का बीज अभिनवगुप्त के 'लोचन' में है। कारिकाओं और वृत्ति की व्याख्या करते हुए अभिनव ने अनेक स्थलों पर कारिका कार और वृत्ति कार का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कारिका कार के लिए मूलग्रन्थकृत (कार) तथा वृत्तिकार के लिए ग्रन्थकृत् (कार) शब्द का भी प्रयोग 'लोचन' में मिलता है। अतएव डा० बुहर और उनके पश्चात् प्रो० जेकोबी, प्रो० कीथ और इधर डा० डे तथा प्रो० काणे का मत है कि कारिका कार अर्थात् मूलध्वनिकार और वृत्तिकार आनन्दवर्धन में भेद है। इस श्रेणी के पण्डितों का अनुमान है कि कारिकाकार का नाम सहदय था- उसी के आधार पर अभिनव ने 'ध्वन्यालोक' को कई स्थानों पर 'सहदयालोक' भी लिखा है । मुकुल आदि कुछ कवि आचार्यो ने भी ध्वनिकार के लिए सहृदय शब्द का प्रयोग किया है, " तथाहि तत्र विवक्षितान्यायपरता सहृदयैः काव्यवर्त्मनि निरूपिता ।" इसके अतिरिक्त प्रो० कोणे ने प्रथम कारिका के 'सहृदयमनः प्रीतये' अंश की वृत्ति में 'सहृदयानामानन्दो मनसि लभतां प्रतिष्ठाम्' आदि शब्दो के आधार पर इस अनुमान को पुष्ट करने की चेष्ठा की है। उनकी धारणा है कि आनन्द ने जान-बूझकर श्लेष के आधार पर इस वृत्ति में अपने गुरु मूल-ध्वनिकार सहृदय और अपने नाम का समावेश किया है। परन्तु उधर इनके विपरीत डा० संकरन का मत है कि 'लोचन' में अभिनवगुप्त ने केवल स्पष्टीकरण के उद्देश्य से ही कारिकाकार और वृत्तिकार पृथक् उल्लेख किया है ।। संस्कृत के अनेक आचार्यो ने कारिका और वृत्ति की शैली अपनायी है। सूत्र रूप में सिद्धान्त - कारिका देकर वे स्वयं ही उसका वृत्ति द्वारा व्याख्यान करते हैं - वामन, मम्मट आदि ने यही पद्धति ग्रहण की है । इसके अतिरिक्त स्वयं अभिनव ने ही 'अभिनवभारती' में अनेक स्थलों पर दोनों का अभेद माना है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सम आसपेक्ट्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन संस्कृत में' डा० संकरन ने अभिनव के उद्धरणों द्वारा ही इस भेद सिद्धान्त का खण्डन किया है, और संस्कृत की परम्परा को ही मान्य घोषित किया है ।

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

डा० संकरन् का तर्क है कि यदि कारिकाकार का व्यक्तित्व पृथक् था तो उनके लगभग एक शताब्दी पश्चात् कुन्तक, महिमभट्ट तथा अभिनव के शिष्य क्षेमेन्द्र को इस विषय में भ्रान्ति के लिए अधिक अवकाश नहीं था । इसके अतिरिक्त यह कैसे सम्भव हो सकता है कि स्वयं आनन्द ही उनसे परिचित न हों या उन्होंने जान-बूझकर अपने गुरु का नाम छिपाकर अपने को ही ध्वनिकार घोषित कर दिया हो । आनन्द ने स्पष्ट ही अपने को ध्वनि का प्रतिष्ठाता कहा है।

कुन्तक

काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति सम्प्रदाय के व्याख्याता कुन्तक कश्मीर में ही 975 ई. तथा 1025 ई. के बीच हुए थे। अभिनवगुप्त इसके समकालिक थे। कश्मीरी विद्वानों के विशिष्टता के अनुसार इन दोनों ने एक-दूसरे की चर्चा तक नहीं की है । कुन्तक की एक ही कृति 'वक्रोक्तिजिवीत' मिली है। इसमें कारिकाएँ तथा उनकी सोदाहरण विस्तृत व्याख्या है। पूरा ग्रन्थ चार उन्मेषों में विभक्त है।

प्रकृत शास्त्रीय ग्रन्थ 'वक्राक्तिजीवितम्' कविवर आचार्य राजानक कुन्तक की एक मात्र उपलब्ध अपूर्ण अर्थात् खण्डित रचना है । यद्यपि अपने पूर्ववर्त्ती महाकवियों की परम्परा के अनुसार ही आचार्य कुन्तक ने भी ग्रन्थारम्भ में आत्मवृत्तविषयक कोई भी निर्देश नहीं दिया है । सम्भव है कि ग्रन्थ की परिसमाप्ति पर उन्होंने आत्मविषयक कुछ लिखा हो किन्तु ग्रन्थ का अन्तिम भाग अद्यावधि अप्राप्य होने के कारण तद् विषयक कुछ भी पता नहीं चलता है। तथापि अन्यान्य उपलब्ध आन्तरिक एवं बाह्य-साक्ष्यों के आधार पर आचार्य कुन्तक के समयनिर्धारण आदि पर विचार किया जा रहा है-

आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक

आचार्य कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवितम्' ग्रन्थ में आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक से अनेक कारिकाएँ एवम् उदाहरण प्रस्तुत किये हैं:-

ननु कैश्चित् प्रतीयमानं वस्तु ललनालावण्यसाम्याल्लावण्यमित्युपपादितमिति-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीशु महाकविनाम् ।

यत्तत्प्रसिद्धावयवतिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनानाम् ।। (ध्वन्या० 1-4)

पुनः रसवदलङ्कार के खण्डन के सन्दर्भ में अधोलिखित कारिका-

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गन्तु रसादयः ।

काव्ये तस्मिन्नलङ्कारो रसादिरित में मतिः (ध्वन्या० 2–5)

वृत्तिभाग से उद्धृत अंश यथा-

'क्षिप्तो हस्तावलनः' इत्यादि । (ध्वन्या० पृ० 195)

'किं हास्येन न मे प्रयास्यसि' इत्यादि । (ध्वन्या० पृ० 193) |

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

मंगलिकश्लोक द्वारा 'क्रियावैचित्र्यवक्रता' का उदाहरण यथा-

'स्वेच्छा केसरिणः' इत्यादि । (ध्वन्या० पृ० 4) ।

इस प्रकार निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि आचार्य कुन्तक आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक की कारिकाओं तथा वृत्तिभाग से सुपरिचित किं वा ध्वन्यालोककार के परवर्त्ती कवि थे ।

इसी प्रकार कविवर राजशेखर की विभिन्न रचनाओं से भी आचार्य ने प्रकृत ग्रन्थ में कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं-

प्रकरण वक्रता का उदाहरण यथा-

यथा बालरामायणे चतुर्थेऽङ्के लङ्केष्वर / नुकारी नटः प्रहस्तानुकारिणा नटेनानुवर्त्यमानः-

कर्पूर इब दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने ।

नमः श्रृङ्गारबीजाय तस्मै कुसुमधन्वने ।। (बालरामायण 4)

महाकवि राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा (पृ० 75-73) में स्पष्टतः ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्द्धन का नामोल्लेख किया है-

प्रतिभाव्युत्पत्योः प्रतिभा श्रेयसित्यानन्दः ।

सा हि कवेः अव्युत्पत्तिकृतं दोशमशेषमाच्छादयति ।

तदाह-अव्युत्पत्तिकृतो दोशः षक्त्या संव्रियते कविः ।

यस्त्वषक्तिकृतस्तस्य झगित्येवावभासते ।।

इससे निर्विवाद रूपेण राजशेखर का आनन्दवर्द्धनाचार्य के पश्चात् होना सिद्ध हो जाता है। अब आचार्य कुन्तक के समय - निर्धारण से पूर्व राजशेखर के समय पर हमें विचार करना आवश्यक हो जाता है । प्रोफेसर कोनो ने किन्हीं शिलालेखों के आधार पर राजशेखर को चेदि राजवंश से सम्बन्धित माना है। एक किवदन्ती के अनुसार राजशेखर ने अपने तीनों नाटक श्रीशङ्कराचार्य को समर्पित किये थे । माधवाचार्य ने अपने 'शङ्करविजय' में राजशेखर की कथा का वर्णन किया है- 'तत्रोदितः कश्चन राजशेखरः इत्यादि। जर्मनविद्वान् फ्लीट महाशय ने अस्नी शिलालेख (974 वि० ; 917 ई०) से राजा महिपाल को ही सम्बन्धित माना है जिनके गुरु राजशेखर थे जैसा कि स्वयं राजशेखर ने अपने विभिन्नग्रन्थों में दर्शाया है-

देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणी । (बालभारत 1 - 11) ।

रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः । (विद्धशालभ० 1-6)

रहुउल चुडामणि यो महिन्दबालस्स को अ गुरु । (कर्पूरमञ्जरी 1–5) बालकई कइराओ णिबभर राअस्स तह उवज्झाओ। (कर्पूरमञ्जरी 1-9) पिशेल महोदय ने इन निर्भयराज को महेन्द्रपाल ही माना है । इसी

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

महेन्द्रपाल तथा उसके पुत्र महीपाल ने कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज में राज्य कियज्ञं सियाडोनी शिलालेख के अनुसार 903 से 907 तक महेन्द्रपाल तथा 917 तक महीपाल कान्यकुब्ज (कन्नौज) के सम्राट् रहे। इस प्रकार राजशेखर का समय अपने पूर्ववर्ती आनन्दवर्द्धनाचार्य के पश्चात् 884 ई. के अनन्तर तथा 959 ई. के पश्चात् ही निश्चित की जा सकती है।

डा० मुकर्जी तथा डा० लाहिड़ के मतानुसार आचार्य अभिनवगुप्त आचार्य कुन्तक के वक्रोक्तिजीवित से सुपरिचित थे तथा उन्हें भरत के लक्षण की वक्रोक्ति के साथ समानता सिद्ध की। अत एव अभिनव गुप्त आचार्य कुन्तक के परवर्ती थे क्योंकि आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अपनी ध्वन्यालोक वृत्ति में प्रतीयमान रूपक के उदाहरण में 'प्राप्तश्रीरेव कस्मात्' श्लोक दिया है तथा इसी श्लोक को आचार्य कुन्तक ने 'प्रतीयमानव्यतिरेक' के उदाहरण में बड़ी श्रद्धा के साथ प्रस्तुत किया हैं:-

‘तत्त्वाध्यारोपणात् प्रतीयमानतया रूपकमेव पूर्वसूरिभिराम्नातम्

आचार्य अभिनवगुप्त ने इसी की व्याख्या निम्न प्रकार की है :-

यद्यपि चात्र व्यतिरेको भवति तथापि स पूर्ववासुदेवस्वरूपात् नाद्यतनात् । (वक्रो० जी०)

आचार्य अभिनव गुप्त का " तटि तारं ताम्यति ? इत्यत्र तट शब्दस्य पुंस्त्व - नपुंसकत्वे अनादृत्य स्त्रीत्वमेवाश्रितं सहृदयैः - स्त्रीति नामापि मधुरम् इति कृत्वा" यह कथन आचार्य कुन्तक के 'नामैव स्त्रीति पेशलम्' कारिकांश तथा उसकी वृत्ति का केवल अनुवाद है । आचार्य कुन्तक का सनामनिर्देश महिमभट्ट के 'व्यक्तिविवेक', नरेन्द्रप्रभसूरि के ‘अलङ्कारमहोदधि’ , विद्याधर की 'एकावली' एवम् सोमेश्वर की 'काव्य - प्रकाश - टीका' में भी मिलता है-

1) काव्यकाञ्चनकषाश्ममानिना कुन्तकेन निजकाव्यलक्ष्मणि ।

यस्य सर्व निरवद्यतोदिता श्लोक एष स निर्दिश्यते मया । ।

2) माधुर्यसुकुमाराभिधभोजोविचित्राभिधं तदुभयमिश्रत्वसम्भवं मध्यमं नाम मार्गं केऽपि बुधा कुत्तु (न्त) कादयोऽवदनुक्तदयन्तः । यदाहुः–सन्ति तत्र त्रयो मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः ।

सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः । । (अल० महो० पृ० 202)

3) एतेन यत्र कुन्तकेन भक्तावन्तर्भावितो ध्वनिस्तदपि प्रत्याख्यातम् । (एकावली पृ० 50)

इस प्रकार निर्विवाद रूप से उपर्युक्त ग्रन्थकार आचार्य कुन्तक के परवर्ती थे तथा इन सब में महिमभट्ट प्राचीनतम थे । आचार्य महिमभट्ट ने आचार्य कुन्तक की वक्रताओं तथा ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धनाचार्य की ध्वनियों को एक रूप कहा है।

ध्वनिवर्णपदार्थेशु वाक्ये प्रकरणे तथा ।

प्रबन्धेऽप्याहुराचार्याः केचिद् वक्रत्वमाहितम् । । (अभि० भा० पृ० 227 – 21)

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

कहकर साहित्यमीमांसाकार ने भी आचार्य कुन्तक की ही कारिकाओं को उद्धृत किया है। अतः महिमभट्ट, अभिनवगुप्त, नरेन्द्रप्रभूसरि, विद्याधर तथा सोमेश्वर प्रभृति ग्रन्थकार आचार्य कुन्तक की पर सीमा बनाते हैं । इस प्रकार विविध विवेचनों से आचार्य कुन्तक की पूर्वसीमा 950 ई. तथा पर सीमा 1015 ई. मानी जा सकती है। क्योंकि आचार्य अभिनव का जन्म 950-60 ई० में निर्धारित कर उनका कृतित्वकाल 990 से 1014-15 इ० ही सम्भव है तथा आचार्य अभीनव से पुर्व आचार्य कुन्तकं का होना निश्चित ही है आचार्य कुन्तक शैव थे। 'वक्रोक्तिजीवितम्' के प्रारम्भ में वृत्ति में शिवजी की वन्दना करते हुये – "जगतत्त्रितयवैचित्र्यचित्रकर्मविधायिनम् । शिवशक्ति परिस्पन्दमान्नोपकरणं नुमः ।। " कहकर अपने आराध्यदेव शिव को शक्तिपरिस्पन्दमात्रोपकरण वाला मना है। वह प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुयायी थे। प्रत्यभिज्ञादर्शन में भी शिव को ही एक मात्रपरमतत्त्व तथा इस समस्त प्रपञ्च जगत् की रचना के लिए उनकी शक्तिपरिस्पन्द को ही पर्याप्त माना जाता है । शक्तिएवं शक्तिमान शिव में पूर्ण भेद है ।

ग्रन्थ का अभिधान-आचार्य कुन्तक के एक मात्र उपलब्ध इस अपूर्ण ग्रन्थ का नाम वक्रोक्तिजीवितम्' ही रखा होगा जैसा की उन्होंने स्वयं ग्रन्थ के द्वितीय तथा तृतीय उन्मेष के अन्त में-' इति श्रीमत्कुन्तकविरचिते वक्रोक्तिजीविते द्वितीय/तृतीय उन्मेषः' लिख कर स्पष्ट किया है, परन्तु कतिपय विद्वान् प्रथम उन्मेष के अन्त में लिखित- 'वक्रोक्तिजीविते काव्याल ङ् –कारे' तथा ग्रन्थ की द्वितीय कारिका- "लोकोत्तरचमत्कारकारिवैचित्र्यसिद्धये । काव्यस्यायमलङ् – कारः कोऽप्यपूर्णो विधीयते ।। " के अनुसार ग्रन्थ के कारिकाभाग को 'कावयालङ्कार' तथा वृत्तिभाग को 'वक्रोक्तिजीवित' संज्ञा देते हैं –

आचार्य कुन्तक के अनेक पवरवर्ती कवियों ने आचार्य को केवल 'वक्रोक्तिजीवितकार' के रूप में 'कुन्तकविरचिते वक्रोक्तिजीविते' कहकर ही स्मरण किया है न कि 'काव्यलङ्कार' तथा वृत्तिभगका 'वक्रोक्तिजीवित' नहीं, अर्थात् दो नाम नहीं रखे। फिर प्रकृतग्रन्थ का यदि 'काव्यालङ्कार' नाम रखना ही आचार्य कुन्तक को अभीष्ट होता तो अन्य-भामह, रुद्रठ आदि आचार्यों के समान ही वह भी कारिका में – 'काव्यस्यायमलङ्कारः कोऽप्यपूर्वी विधीयते तथा वृत्ति में - "अलङ्कारों विधीयते, अलङ्करणं क्रियते । कस्य - काव्यस्य, कवेः कर्म काव्यं तस्य " । न लिखकर 'काव्यालङ्कार इति ग्रन्थः क्रियते - ऐसा लिखते । अपने ग्रन्थों के काव्यालङ्कार प्रभृति नाम रखने वाले आचार्यो ने लिखा है :-

'काव्यालङ्कार इत्येषो यथा बुद्धिर्विधास्यते । (भामह - काव्यालङ्कार 1-1) ।

काव्यालङ्कारोऽयं ग्रन्थः क्रियते यथायुक्तिः' । (रुद्रट - काव्यालङ्कार 1-2)।

आचार्य उद्भट के 'काव्यालङ्कारसङ्ग्रह' की विवेचना करते हुए प्रतिहारेन्दुराज लिखते हैं-

विद्वद्ग्रन्थान्मुकुलकादधिगम्य विविच्यते ।

प्रतिहारेन्दुराजेन काव्यालङ्कार - संग्रहः । ।

इनके अतिरिक्त आचार्य वामन ने भी अपने ग्रन्थ का नाम 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' रखा। आचार्य कुन्तक ने दण्डी के काव्यादर्श या आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक को ही अपना विषय बनाया। आचार्य की यह वृत्ति भी 'ननु च सन्ति चिरन्तनास्तदलङ्काराः । यही सिद्ध करती है कि प्रारम्भिक कारिका में –

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

'काव्यस्यायमलङ्कारः कोऽप्यपूर्वो विधीयते । लिखकर केवल काव्या - लङ्कार विषयक अपने अपूर्व ग्रन्थ की रचना की ओर इंगित किया है क्योंकि उन्होंने स्वयं वृत्तिभाग में- "अलङ्कारः शब्दः शरीरस्य शोभातिशयकारित्वात् मुख्यतया कटकादिषु वर्तते, तत्कारित्वसामान्यदुपचारादुपमादिषु, तद्वदेव च तत्सदृशेषु गुणादिषु तथैव च तदभिधायिनि ग्रन्थे । अलङ्कार शब्द की एतदर्थ ही व्याख्या की होगी, निरर्थक नहीं। यही नहीं, आचार्य कुन्तक ने उपमादि सम्पूर्ण अलङ्कार वर्ग को ही अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवित' की वाक्यवक्रता में समाहित कर दिया है–

" वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भिद्यते यः सहस्त्रधा ।

यत्रालङ्कारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविश्यति

तयोः पुनरलङ्कृतिः वक्रोक्तिरेव' । (1-10)

इस प्रकार आचार्य कुन्तक को अपने ग्रन्थ का 'वक्रोक्तिजीवित' नाम रखना ही अभिष्ट था, इसके विपरीत शङ्का करना निर्मूल है। आचार्य कुन्तक ने अपने ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य भी अत्यन्त स्पष्ट कर दिया । उन्होंने अलङ्कारग्रन्थ तथा अलङ्कार्य काव्य दोनों के प्रगयोजनों को पृथक् करते हुए लिखा है– "यद्यपि सन्ति शतशः काव्यालङ्कारास्तथापि न कुतश्चिदप्येवंविधवैचित्र्यसिद्धिः" । उक्तरूपवैचित्र्यसिद्धिः प्रयोजनमिति'। अर्थात् उन्होंने अन्य प्राचीन आचार्यों के अलङ्कार ग्रन्थों में अलङ्कारवैचित्र्य न पाकर प्रकृतग्रन्थ की रचना वैचित्र्यसिद्धि के निमित्त की । इसी प्रकार अलङ्कार्य काव्य रचचना का प्रयोजन सहृदय-हृदयाह दकरत्व होकर पुरुषार्थचतुष्टय सिद्धि को माना है-

"धर्मादिरुपेयभूतस्य चतुवर्गस्य साधने सम्पादने तदुपदेशरूपत्वादुपायस्तत्प्राप्तिनिमित्तम्" । (वक्रो० जी० पृ० 7)

"कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम् ।

आहाद्यामृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ।। " (वक्रो० जी० पृ० 12)

योऽसौ चतुर्वर्गफलास्वादः प्रकृष्टपुरुषार्थतयासर्वषास्त्रप्रयोजनत्वेन प्रसिद्धः, सोऽप्यस्य कामपि साम्यकलनां कर्त्तु मर्हतीति । काव्यामृतचर्वणचमत्कारकलामात्रस्य (वक्रोक्तिजीवितम् पृ० 12) ।

महिमभट्ट

महिमभट्ट (1020-1050 ई.) ने ध्वन्यालोक तथा वक्रोक्तिजीवित दोनों का खण्डन व्यक्तिविवेक में किया है | मम्मट ने इस ग्रन्थ में प्रतिपादित दोष - विवेचन का अनुसरण किया है और उनके अनुमानवादी मत (व्यञ्जना अनुमान से भिन्न नहीं) का खण्डन भी किया है। व्यक्तिविवेक में तीन विमर्श (अध्याय) हैं जिनमें ध्वनि का खण्डन किया गया है। महिमभट्ट तथाकथित प्रतीयमान या व्यङ्ग्य अर्थ को अनुमान का विषय मानते हैं । ध्वनि के भेदों-प्रभेदों पर वे उपहास करते हैं । ध्वन्यालोक से ध्वनि के 40 उदाहरण लेकर उन्हें अनुमेय सिद्ध करते हैं। उनके अनुसार दो अर्थ होते हैं- वाच्य और अनुमेय । वक्रोक्ति और ध्वनि सब अनुमेय है। द्वितीय विमर्श में उन्होंने दोषों का विवरण दिया है- अनौचित्य काव्य का सबसे बड़ा दोष है ।

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

व्यक्तिविवेक की एक प्राचीन टीका (सम्भवतः रुय्यक कृत) मिली है जिसमें लेखक के मतों का उपहास किया गया है ।

अभिनवगुप्त

अभिनवगुप्त कश्मीर के बहुत बड़े आचार्य तथा तन्त्रवेत्ता थे। शिवाद्वैत दर्शन (प्रत्यभिज्ञा), तन्त्र, स्तोत्र तथा काव्यशास्त्र - विषयक ग्रन्थों की रचना से अपने व्यापक ज्ञान का इन्होंने परिचय दिया है। दर्शन - क्षेत्र में 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा- विमर्शिनी' उत्पलदेव के ग्रन्थ और वृत्ति पर टीका है जो बृहत् और लघु दो संस्करणों में है । तन्त्र के क्षेत्र में इनका 'तन्त्रालोक' बहुत प्रसिद्ध है, इसका संक्षिप्त रूप 'तन्त्रालोकसार' भी इन्होंने लिखा था। मालिनीविजयवार्तिक तथा परात्रिंशिकाविवरण इनके अन्य तन्त्र-ग्रन्थ हैं। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में दो की प्रसिद्धि और महत्ता अत्यधिक है- ध्वनयालोक की लोचन टीका तथा नाट्यशास्त्र की टीका अभिनवभारती । यह नाट्यशास्त्र पर एकमात्र उपलब्ध टीका है किन्तु अनेक स्थानों पर पाठ त्रुटित है। इसमें प्राचीन मतों की समीक्षा भी है। यह एक स्वतन्त्र प्रबन्ध के रूप में है। 'लोचन' ध्वनि और रसनिष्पत्ति को समझने में बहुत सहायक है । अभिनवगुप्त इसकी प्रशंसा में कहते हैं- किं लोचनं विनालोको भाति चन्द्रिकयापि हि ? इसमें परवर्ती टीका 'चन्द्रिका' का संकेत है । इनका साहित्यिक कार्यकाल 980 - 1010 ई. के बीच है ।

क्षेमेन्द्र

कश्मीर - निवासी क्षेमेन्द्र ने प्रायः 40 ग्रन्थों की रचना विविध साहित्य - प्रकारों में की काव्यमाला में इनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। काव्यशास्त्र से सम्बद्ध इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं- औचित्यविचारचर्चा, कविकण्ठाभरण तथा सुवृत्ततिलक । इनका काल प्रायः निश्चित है। बृहत्कथामञ्जरी (19 / 37) के अनुसार इन्होंने अभिनवगुप्त से साहित्य की शिक्षा पायी थी, औचित्यविचारचर्चा तथा कविकण्ठाभरण की रचना राजा अनन्त (1028–35 ई.) के राज्यकाल में की थी एवं दशावचारचरित - काव्य को 1066 ई. में पुरा किया था जब अनन्त के पुत्र कलश का शासन था। अतः क्षेमेन्द्र का काल 1000 ई. से 1070 ई. तक माना जा सकता है। औचित्यविचारचर्चा में औचित्य - प्रस्थान का प्रवर्तन है। इसमें 19 कारिकाएँ हैं, अन्त में पाँच पद्यों में कवि का वंश-वर्णन है। औचित्य के 27 क्षेत्रों को समझाने के लिए क्षेमेन्द्र ने बहुत से उदाहरण अपनी वृत्ति में दिये हैं। सुवृत्ततिलक इसीकी पूरक ग्रन्थ है जिसमें वर्णनीय विषय के अनुसार छन्दों के चयन का औचित्य दिखाया गया है । कविकण्ठाभरण 55 कारिकाओं का ग्रन्थ है जो पाँच सन्धियों में विभक्त है । कविता रचना के पाँच सोपान, शिष्यों के तीन वर्ग, कवियों के पाँच वर्ग तथा दस प्रकार के चमत्कार - ये सब इसकी विशिष्टाएँ विवेचनाएँ है । तीनों पुस्तकें हिन्दी व्याख्या के साथ प्रकाशित हैं ।

मम्मट

काव्यशास्त्र में सर्वाधिक प्रचलित प्रौढ़ ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' के लेखक मम्मट भी कश्मीरी थे। इन्होंने अभिनवगुप्त, नवसाहसांकचरित (1005 ई.) तथा भोज (11 वीं श. पूर्वार्ध) का उल्लेख किया है; काव्यप्रकाश पर प्रथम टीका माणिक्यचन्द्र ने 1130 ई. में लिखी । हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' (1143 ई.) में इनके मत का खण्डन किय। इनके आलोक में मम्मट को 1050-1100 ई. के मध्य रखा जासकता है। इनके दो ग्रन्थ हैं- काव्यप्रकाश तथा शब्दव्यापारविचार |

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

काव्यप्रकाश दस उल्लासों में विभक्त कारिका - वृत्ति - उदाहरण के रूप में लिखा गया अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसमें 142 कारिकाएँ तथा 603 उदाहरण दिये गये हैं । इसमें काव्य के प्रयोजन, हेतु, लक्षण और भेदों का सर्वथा नवीन प्रतिपादन है। ध्वनिकाव्य, गुणीभूतव्यंग्य तथा चित्रकाव्य के भेदों पर विस्तृत विचार करके मम्मट ने व्यञ्जना को पृथक् वृत्ति के रूप में समझाने के लिए पूरा शास्त्रार्थ किया है (उल्लास - 5) । इसीसे इन्हें 'ध्वनि-प्रतिष्ठापक परमाचार्य' कहा गया है। काव्यदोष (उ. 7), काव्यगुण (उ. 8) तथा अलंकारों (उ. 9 तथा 10) पर अत्यधिक प्रौढ़ विवेचन इन्होंने इस ग्रन्थ में किया है । मम्मट ने 61 अर्थालंकारों की विवेचना की गई है ।। काव्यप्रकाश की महत्ता और क्लिष्टता की दृष्टि से इस पर अनेक टीकाएँ लीखी गई जैसे रुय्यक कृत 'संकेत' (1145 ई.), माणिक्यचन्द्र कृत 'संकेत' (1160 ई.), नरहरितीर्थ कृत 'चित्तानुरञ्जिनी' (1242 ई.), चण्डीदास कृत 'दीपिका' (13 वीं श), विश्वनाथ कृत 'दर्पण' (14 वीं श), गोविन्द ठक्कुर कृत 'काव्यप्रदीप' (15 वीं श.., इस पर भी वैद्यनाथ ने 'प्रभा' और नागेश भट्ट ने 'उद्योत टीका लिखी), भीमसेन कृत 'सुधासागर' (1723 ई.), वामनाचार्य झलकीकर कृत 'सुबोधिनी' (बम्बई संस्कृत सीरिज में प्रकाशित) इत्यादि 50 टीकाएँ उपलब्ध हैं इसीलिए कहा गया है-

काव्यप्रकाशस्य कृता गृहे गृहे, टीकास्तथाप्येष तथैव दुर्गमः ।

विश्वनाथ कविराज

उत्कल- प्रदेश के विश्वनाथ कविराज संस्कृत काव्यशास्त्र में सर्वाधिक लोकप्रिय आचार्य हैं जिनका 'साहित्यदर्पण' सभी काव्यप्रेमियों को आकृष्ट करता हैं । इनके पिता का नाम चन्द्रशेखर था जो कलिंग के किसी राजा के सन्धिविग्रहिक (विदेशमन्त्री) थे, विश्वनाथ भी इस पद पर थे। विश्वनाथ अनेक भाषाओं के ज्ञाता (षोडशभाषावारविलासीनिभुजंग) तथा अनेक लक्ष्य ग्रन्थोंटीकाओं के भी लेखक थे। इनकी 'चन्द्रकला' नाटिका भी प्रसिद्ध है । विश्वनाथ ने एक पद्य में (साहित्यदर्पण 4 / 14 की वृत्ति) अलावदीन (खिलजी - शासक 1296 - 1316 ई.) का उल्लेख किया है। संयोगवश साहित्यदर्पण की एक पाण्डुलिपि जम्मू से प्राप्त हुई है जो 1385 ई. में लिखी गयी थी। अतः विश्वास का समय 1300 ई. और 1350 ई. के बीच माना जाता है। इस विषय में अन्य प्रमाण भी हैं ।

साहित्यदर्पण दस परिच्छेदों में विभक्त सर्वागपूर्ण लक्षणग्रन्थ है जिसमें काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र दोनों समाविष्ट हैं। कारिका - वृत्ति - उदाहरण के रूप में यह ग्रन्थ है । उदाहरण बहुत प्राचीन हैं किन्तु कुछ लेखक के पिता - पितामह के हैं, कुछ उनके अपने भी हैं। इसमें 'वाक्यं रसात्मकं वाक्यम्' काव्यलक्षण के रूप में दिया गया है, दोष का काव्यापकर्षक और गुणालंकाररीति का उत्कर्ष - हेतु के रूप में प्रतिपादन है। शब्दशक्ति (परि. 2), रस (3), काव्य के दो भेद ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य चित्रकाव्य का खण्डन), व्यञ्जना की स्थापना (परि. 5), काव्य के स्वरूपगत भेद - दृश्य, श्रव्य और उनका विवरण (परि. 6), दोष (7), गुण (8), रीति (9) तथा अलंकारों (10) का क्रमशः वर्णन किया गया है। सामान्यतः इसमें निष्कर्ष – रूप सिद्धान्त दिये गये हैं, शास्त्रार्थ से दूर रहने का प्रयास है। यह ग्रन्थ पूर्वी भारत में बहुत प्रचलित हुआ अतः इसकी टीकाएँ वहीं लिखी गयीं। लोचन (विश्वनाथ के पुत्र अनन्तदास -कृत), विवृति (रामचरण तर्क - - वागीश, 1701 ई.) इत्यादि प्रसिद्ध टीकाएँ हैं । हिन्दी में शालग्रामशास्त्री की विमला और सत्यव्रत सिंह की विस्तृत

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

शोधपूर्ण व्याख्या प्रख्यात हैं। पं. कृष्णमोहन शास्त्री की संस्कृत व्याख्या तथा केवल परिच्छेद 1, 2 तथा दस पर पी. वी. काणे की अंग्रेजी व्याख्या भी लोकप्रिय है ।।

पण्डितराज जगन्नाथ

पण्डितराज जगन्नाथ एक प्रकार से अन्तिम तथा प्रौढतम काव्यशास्त्री माने जाते हैं। ये तैलंक ब्राह्मण थे, पिता का नाम पेरुभट्ट और माता का नाम लक्ष्मी देवी था । जगन्नाथ ने वेदान्त, मीमांसा, न्याय, व्याकरण की शिक्षा अपने पिता तथा विभिन्न अन्य गुरूओं से ली थी । इनका समय 1590-1670 ई. के बीच है । काव्यशास्त्र में 'रसगङ्गाधर' इनका प्रौढ़ तथा प्रख्यात ग्रन्थ है। यह सम्भवतः 1641 ई. में लिखा गया था (आसफ खाँ की मृत्यु का समय) । इसमें सौन्दर्य - सिद्धान्त की स्थापना की गयी है। काव्यशास्त्रीय की त्रयी (आनन्दवर्धन, मम्मट तथा जगन्नाथ) में अन्तिम तथा प्रौढ़ होने के कारण इनका महत्त्व है। नव्यन्याय की शैली का उपयोग करके प्रत्येक तथ्य को तर्क से पुष्ट करने से जगन्नाथ विद्वानों में आदरणीय हैं । ग्रन्थ में समस्त उदाहरण इनके स्वनिर्मित हैं । ग्रन्थ यद्यपि अपूर्ण है तथापि अपनी विषयवस्तु के कारण अत्यन्त प्रगाढ़ है ।

रसगङ्गाधर दो आननों में विभक्त विशाल ग्रन्थ है । प्रथम आनन में काव्यलक्षण, प्रतिभा का एक मात्र काव्यहेतु होना, रस का स्वरूप तथा भेद, प्राचीन 20 गुणों का स्पष्टीकरण, गुणत्रयवाद, भाव, विभावादि, रसाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावसबलता इत्यादि का विवेचन है । द्वितीय आनन में ध्वनि के विविध भेदों पर प्रकाश डालकर क्रमशः सत्तर अलंकारों की विवेचन की गयी है । 'उत्तर' अलंकार पर ही ग्रन्थ समाप्त हो गया है। इसकी प्राचीन व्याख्या नागेश - कृत मिलती है जो रसगङ्गाधर की रचना के 50 वर्ष पश्चात् लिखी गयी थी। इसका नाम 'गुरुमर्मप्रकाशिका' है। वर्तमान शताब्दी में कविशेखर बदरीनाथ झा ने संस्कृत व्याख्या लिखी जो चौखम्बा संस्कृत सीरिज से प्रकाशित हुई । भट्ट मथुरानाथ शास्त्री की व्याख्या निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित हुई थी ।

उपसंहार

इस शोध पत्र में आप संस्कृत साहित्य के कवियों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व के विषय में विशेष रूप से वर्णन किया गया है आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' की रचना के विषय में संस्कृत के पण्डितों में अनेक मतभेद है। आनन्दवर्धन ने स्पष्ट ही अपने को ध्वनि का प्रतिष्ठाता कहा है। कुन्तक ने काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति सम्प्रदाय के व्याख्याता कुन्तक कश्मीर के है अभिनवगुप्त इसके समकालिक थे। वक्रोक्ति का स्वरूप, उसके भेद; सुकुमार, मध्यम तथा विचित्र मार्गो का विवेचन वक्रता के छह भेदों का क्रमशः निरूपण ये विषय इसमें आये है । आचार्य कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवितम्' ग्रन्थ में आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक से अनेक कारिकाएँ एवम् उदाहरण प्रस्तुत किये हैं: आचार्य कुन्तक आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक की कारिकाओं तथा वृत्तिभाग से सुपरिचित किं वा ध्वन्यालोककार के परवर्त्ती कवि थे। पण्डितराज जगन्नाथ एक प्रकार से अन्तिम तथा प्रौढतम काव्यशास्त्री माने जाते हैं । ये तैलंक ब्राह्मण थे, पिता का नाम पेरुभट्ट और माता का नाम लक्ष्मीदेवी था । रसगङ्गाधर दो आननों में विभक्त विशाल ग्रन्थ है। प्रथम आनन में काव्यलक्षण, प्रतिभा का एक मात्र काव्यहेतु होना, रस का स्वरूप तथा भेद, प्राचीन 20 गुणों का स्पष्टीकरण, गुणत्रयवाद, भाव, विभावादि, रसाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावसबलता इत्यादि का विवेचन है।

(IJPS) 2019, Vol. No. 7, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-6270; p-ISSN: 2455-7455**

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1) संस्कृत साहित्य का इतिहास उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी

2) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास वी.वी. काणे, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, काव्यमाला सिरीज ।

3) संस्कृत शास्त्रों का इतिहास

4) संस्कृत साहित्य का इतिहास

5) वैदिक साहित्य, कपिलदेव द्विवेदी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी ।

REFERENCES

1. Sanskrit Sahitya ka Itihaas, Umashankar Sharma Rishi, Chaukhamba Publication, Varanasi
2. Sanskrit Kavyashastra ka Itihaas, V.V. Kane, Chaukhamba Publication, Varanasi, Kavyamala Series.
3. Sanskrit Shastron ka Itihaas
4. Sanskrit Sahitya ka Itihaas
5. Vaidik Sahitya, Kapildev Dwivedi, Chaukhmaba Surbharti Publication, Varanasi